International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 28-07-2021, Accepted: 15-08-2021, Published: 30-08-2021
Volume 3, Issue 3, 2021, Page No. 49-50

संत कवियों का काव्यादर्श

ज्योत्स्ना आनंद
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध–आलेख का ध्येय संत काव्यधारा के काव्यादर्श को लेखनबद्ध करना है । संत काव्यधारा की समृद्ध परम्परा के काव्यादर्श एवं जीवनादर्श के मध्य सामंजस्य– सूत्र की खोज एवं अवलोकन ही प्रस्तुत शोध–आलेख का मुख्य उद्देश्य रहा है । शोध–आलेख द्वारा संत कवियों के काव्यादर्श का बहुआयामी विवेचन प्रस्तुत करना ही साध्य रहा है ।

मूल शब्दः संत, काव्यादर्श, कवि, साखी, प्रयोजन, साहित्यशास्त्र

प्रस्तावना

काव्यादर्श से तात्पर्य कवि की काव्य रचना करने के प्रयोजन से है अर्थात् कवि का आशय ही काव्यादर्श है। आचार्य दण्डी के काव्यादर्श की व्याख्या लिखते समय विद्वान् रणवीर सिंह लिखते हैं–"कवियों के लिए महान ग्रन्थ काव्यादर्श लिखकर दण्डी ने अलंकार–संप्रदाय को व्यवस्थित रूप दिया है ।" काव्य का आधार मानव–जीवन होता है। हम कह सकते हैं कि काव्य जीवन की आलोचना एवं मापदण्ड है। काव्यादर्श एवं जीवन के आदर्श में परस्पर निकटता का संबंध है। जो काव्य जीवन से जुड़ा हुआ होता है, वही काव्य जीवन–दर्शन के लिए उपयोगी तथ्यों एवं तत्त्वों की सर्जना भी करता है। काव्य अथवा साहित्य के आदर्श या प्रयोजन के संदर्भ में आचार्य एकमत नहीं हैं। विद्वानों का एक वर्ग नैतिकता को काव्यादर्श मानता है तो दूसरा वर्ग इसके विरुद्ध है। एक वर्ग 'स्वान्तः सुखाय' को काव्यादर्श मानता है, दूसरा वर्ग 'बहुजन हिताय' को। परंतु इतना निश्चित है कि काव्यादर्श मानवीय अनुभूतियों को तीव्र करना तो अवश्य है। जीवन को सुसंस्कृत व परिष्कृत बनाने में काव्य का प्रमुख योगदान है।

"काव्य या साहित्य के मूल्यांकन के लिए 'आदर्श' के अतिरिक्त नियम,मान,मानक,मानदंड,प्रतिमान,मान्यता मूल्य,मत,धारणा स्थापना आदि शब्दों का व्यवहार किया गया है। काव्यादर्श की दृष्टि से यदि संत काव्य पर विचार करें तो हम पाते हैं कि हिंदी के संत कवियों में से किसी ने भी उपर्युक्त काव्यादर्शों को स्वीकार नहीं किया। उनके काव्य से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें लौकिक ऐश्वर्य एवं यश की लालसा नहीं थी। जिन संतों ने समाज और संसार को सारहीन मानकर उसका त्याग कर दिया था, उनके लिए काव्य द्वारा व्यवहार व नैतिकता की शिक्षा देना महत्त्वहीन था। संतों ने सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों का विरोध किया। उनके विरुद्ध विद्रोह एवं क्रांति की। अतः मांगलिक–अमांगलिक, शिव–अशिव भावना से काव्य की रचना करना उनके लिए निस्सार था। यही कारण है कि हिंदी के संत कवियों ने काव्य का कोई प्रचलित आदर्श नहीं अपनाया। न तो उन्होंने छंद, काव्यशास्त्र आदि के नियमों का अध्ययन किया और न ही इन सबके प्रति उनकी कोई आस्था थी। उन्होंने तो काव्य और काव्यशास्त्र के अन्य आवश्यक तत्त्वों की निंदा की है। निस्संदेह संतों ने यह प्रमाणित कर दिया कि काव्यशास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ रहकर भी काव्य–रचना की जा सकती है। संतों का मानना था कि काव्य–रचना के लिए काव्य के लिए तीव्र अनुभूति एवं चिंतन की गहनता अपेक्षित होती है न कि छंद अलंकार शब्द–शक्ति और अन्य काव्य–गुण। इस बात को संतों ने काव्य–रचना करके सिद्ध भी कर दिया। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि काव्य की आत्मा 'भाव' होती है। जब काव्य की आत्मा दृढ़ एवं उच्च होगी तो वातावरण एवं अन्य उपकरण तो स्वयं ही जुट जाते हैं। संतों को काव्यशास्त्र का ज्ञान नहीं था और न ही उन्होंने सचेष्ट होकर काव्य–रचना की थी। इस कारण से संतों के काव्य को उपेक्षणीय नहीं माना जा सकता। यदि हम संत साहित्य का अध्ययन व विवेचन करें तो हम पाते हैं कि उनके काव्य में भी उनके काव्यादर्शों की अभिव्यक्ति हुई है। संतों ने काव्य को मात्र कला की दृष्टि से नहीं देखा। उन्होंने तो काव्य को अपने भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। यही कारण है कि इन संत कवियों की रचनाओं में उनके काव्य–विषयक आदर्श निहित मिलते हैं।

कबीर संत काव्यधारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। कबीर ने कवि और कविता के संदर्भ में कुछ अधिक नहीं कहा। परंतु उनकी कुछ साखियों से स्पष्ट हो जाता है कि वे कविता को निस्सार वस्तु मानते थे और उनकी दृष्टि में कवि सामान्य व्यक्ति नहीं था। क्योंकि वह तत्त्व को त्याग कर सारहीन पदार्थों में रमा रहता है। कबीर तो कवि को मृत समझते थे – 'कवि कवीने कविता मुये।' उनकी दृष्टि में ग्रंथ रचना और काव्य रचना व्यर्थ का परिश्रम थे। क्योंकि काव्य रचना करके कोई भी परमेश्वर को प्राप्त करने वाला पंडित नहीं बन पाया था। कबीर प्राकृत विषयों पर काव्य–रचना करने के विरोधी थे। उनके विचार में वही वास्तविक कवि है जो ब्रह्म के साक्षात्कार का गायन या रचना करे। उनके शब्दों में –

जग भव का भावना का गावै।
अनुभव गावै सो अनुरागी है।।

कबीर के काव्यादर्श को निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है

प्रेमभगति ऐसी कीजिए, मुखि अंमृत बरिखै चंद।
आपहि आप विचारिए, तब केता होइ अनंद रे।।
तुम्ह जिति जानौ गीत है, यह निज ब्रह्म विचार।
केवल कहि समझाइया, आतम साधक सार रे।।

कबीर भाव के स्तर पर कहते हैं

पिउ परिचय तब जानिये,पिउ से हिलमिल होय ।

पिउ की लाली मुख पड़े,परगट दीसै सोय।।"

भाषा के संदर्भ में भी कबीर का अपना आदर्श है। वे क्लिष्ट भाषा के स्थान पर आम बोलचाल की भाषा को ही उपयोगी मानते थे। क्योंकि संस्कृत निष्ठ भाषा से तो केवल कुछ ही लोग लाभ उठा सकते है, संस्कृत एक सीमित समूह की भाषा है परंतु आम बोलचाल की भाषा तो सभी के लिए सुगम व सरल है। उन्होंने कहा भी है – 'संसकिरत है कूपजल भाखा बहता नीर।' जो भाषा या काव्य जनता की पहुँच से दूर है, उसे वे संसार के लिए उपयोगी नहीं मानते।

वस्तुतः कबीर के काव्य का मेरुदण्ड लोक–साक्षात्कार एवं भक्ति–भाव की अनुभूति है। कबीर का काव्यादर्श भक्ति काव्य रचना से आनंद की अनुभूति और मोक्ष सिद्धि माना जा सकता है। दादू ने भी आनंद को काव्यादर्श के रूप में मान्यता दी है। मानसिक विकारों के शमन पर बल दिया है और मोक्ष को भक्त का काम्य स्वीकार किया है।

संत कवि नानक भी साखी रचना को ब्रह्म के प्रति वास्तविक प्रीति स्थापित करने में बाधक मानते हैं। उनके विचारानुसार शब्दों और साखियों में अभिव्यक्त प्रेम वास्तविक कवित्व शक्ति का परिचायक है और न ही दृढ़ एवं सच्चे प्रेम का ही संस्थापक है। फिर ऐसे निष्प्रयोजन काव्य से क्या लाभ? मलूकदास भी प्राकृत विषयों पर काव्य–रचना को हेय समझते हैं। इनके मतानुसार यदि काव्य–रचना करनी ही है तो उस ब्रह्म की प्रशंसा व गुणगान में करनी चाहिए जिसके कारण हमारा संसार में अस्तित्व है। इस आधार पर संत मलूकदास का काव्यादर्श ब्रह्म का गुणगान करना माना जा सकता है।

पलटू साहब कविता को प्रपंच मानते हैं क्योंकि कविता–लेखन में मनुष्य का मन और शक्ति ब्रह्म आराधना से विलग रहते हैं। निश्चय ही कविता साधना में बाधक है। पलटू साहब का मत है

पलटू पण्डित सोई है कलम–हाथ नहिं लेय।
बिनु कागद बिनु अच्छरै बिनु मसि से लिखि देय।।

रैदास का काव्यादर्श आत्मा के सद् स्वरूप का दर्शन करना है। रैदास के मतानुसार हरि कथा की अभिव्यक्ति के अभाव में वह पांडित्य और बानी व्यर्थ है–

थाथा पंडित थाथी बानी। थाथी हरि बिनु सभै कहानी।

निष्कर्ष

विचार किया जाए तो सुन्दरदास सभी संतों में सर्वाधिक शिक्षित और भाषा–विज्ञ थे। इन्हें छंद, अलंकार आदि का भी ज्ञान था। ये काव्य में मोहकता, सरसता व तुकान्तता को आवश्यक मानते थे परंतु साथ ही काव्य की आत्मा 'हरि यश गान' का समावेश भी काव्य में अनिवार्य मानते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि संतों का सर्वाधिक शिक्षित कवि भी काव्य की आत्मा ब्रह्म का गुणगान ही मानता है।

चमत्कार और कला के प्रदर्शन को वह महत्त्व नहीं देता है। काव्य–कौशल का निर्वाह या काव्यांग चर्चा उनका लक्ष्य नहीं था। उनकी दृष्टि काव्य मूल्यों की अपेक्षा मानव–कल्याण और आध्यात्मिक तत्त्व चिंतन पर अधिक रही है जिसके कारण संस्कृत साहित्यशास्त्र की परिपाटी उन्हें आकृष्ट नहीं कर सकी। उनका दृष्टिकोण बाह्य न होकर आंतरिक है। यश प्राप्ति जैसे गौण फलों की उन्होंने उपेक्षा की है।

संत कवियों का साधक और उपदेशक का रूप कवि रूप से अधिक मधुर एवं स्वाभाविक है। सहज भावों की स्वाभाविक शैली में अभिव्यक्ति ही संत कवियों का काव्यादर्श है। कविता तो उनकी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का एक साधन मात्र थी, कवि को सीमा में बांधने का साधन नहीं।

संदर्भ

1. हिंदी काव्यादर्श (आचार्य दण्डी के काव्यादर्श की व्याख्या):: रणवीर सिंह,संस्करण–1958,ओरिएंट बुक डिपो,नई दिल्ली, पृष्ठ.11 (भूमिका–भाग)
2. हिंदी के छायावादी कवियों के काव्यादर्श(शोध प्रबंध–1993):: बलदेव सिंह,हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, पृष्ठ.21
3. संत साहित्य रूरूलक्ष्मण नारायण गर्दे, श्री आर्या दुर्गा निकेतन, काशी,पृष्ठ.15